जन साक्षरता और राष्ट्र-निर्माण

□ प्रो० बी० एल० धाकड़,

(भू० पू० प्राध्यापक अर्थशास्त्र, उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर; ७१, भूपालपुरा, उदयपुर)

शिक्षा स्वयं में एक वरदान है। बालक एक ईश्वरीय देन है। मानव विकास एक मूलभूत आधारशिला है जिस पर किसी राष्ट्र का स्वरूप निर्भर करता है। वह विकास एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है और उसमें एक विशाल कार्य-क्रम अन्तर्निहित है। ऐतिहासिक सन्दर्भ में शिक्षा मानव शक्ति के उन्नति की आधार भूमिका रही है। रोबर्ट रिसे (Robert Richey) के मत के अनुसार शिक्षा सामाजिक उत्थान की प्रमुख भूमिका रही है। बालक देश की सम्पत्ति है उसको सँवारना और योग्य बनाना एक बड़ी मनोवैज्ञानिक समस्या है, जिसको विकसित देशों ने बड़ी निष्ठा से समाधान किया है। बालक एक नव पौध है जिसको अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित करना एक राष्ट्रीय जिम्मेदारी है, आगे ये ही बालक देश का भविष्य उज्ज्वल करते हैं अन्यथा धूमिल भी कर सकते हैं। राष्ट्र की छवि उसी पर आधारित है। यह युग अन्तर्राष्ट्रीयता का युग है, और पृथक्वादी सिद्धान्त समयानुकूल नहीं है।

रोबर्ट रिसे का यह भी अभिमत है कि बाल्यावस्था में ही बालक का जीवन निर्मित किया जा सकता है और उसकी विभिन्न सुप्त शक्तियाँ जैसे कला, अभिरुचि व धारणायें, उत्प्रेरणा व मूल्य को प्रभावित किया जा सकता है। इन शक्तियों के निर्माण में सामाजिक शक्तियाँ विशेष दायित्व रखती हैं। प्रत्येक बालक की अपनी आशायें व अपेक्षायें होती हैं और वे विभिन्नता लिये हुए होती हैं, कोई भौतिक समृद्धि का इच्छुक होता है या कोई सामाजिक प्रतिष्ठा का, तथा कोई राजनैतिक प्रभुत्व अथवा व्यावसायिक योग्यता का। वैसे वर्तमान तकनीकी युग में विकास क्रम के अवसर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहते हैं।

भारत की ओर दृष्टिपात करें तो यह एक प्राचीन संस्कृति का देश है, किन्तु वर्तमान युग में इसको निरक्षरता व गरीबी दोनों अधिकांश रूप में विरासत में मिली हैं। साम्राज्यवाद ने इसको झकझोरा है। दोनों ही दृष्टि से इसकी स्थिति सम्मानजनक नहीं है, यह औचित्य है। दोष-तिहाई जनसंख्या इस देश की निरक्षर है और आधी जनसंख्या गरीबी की सीमा की रेखा के नीचे है। अधिकांश भारतवासियों के लिये जीवन जीना और जीवन यापन प्रमुख समस्या बनी हुई है। सम्पन्नता कुछ तक ही निहित है, विपिन्नता सर्वत्र है। क्या इन दोनों समस्याओं का समाधान जन साक्षरता में विद्यमान है, यदि है तो इसमें अत्युक्ति नहीं है?

गरीबी और निरक्षरता दोनों अभिन्न हैं और विषाक्त चक्र से जुड़े हुए हैं। इनको तोड़ना नितान्त आवश्यक है। सही शिक्षा ही एक मात्र उपाय है जो जन समुदाय में सामाजिक जागरूकता का संचार कर सकती है और समाज का नवीन अभ्युदय संभावित हो सकता है।

जापान का ज्वलन्त उदाहरण हैमारे समक्ष है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में मेजी युग से साक्षरता अभियान प्रारम्भ किया गया और उसमें इतनी गति दी कि राष्ट्र आज शत-प्रतिशत शिक्षित है। शिक्षा विकास और संस्कृति की दृष्टि से एशिया में सर्वोच्च स्थान के साथ, विश्व के प्रमुखतम देशों में अपना स्थान रखता है। जापान के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोगों की संकल्पता, क्रियात्मकता और देश-प्रेम एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करता है। लेखक ने जापान में स्वयं अनुभव किया। भारत भी इस ओर उन्मुख अवश्य है।

समस्या

भारत में दुहरापन की व्यवस्था है। ग्रामीण और शहरी अंचलों में मूल्यों तथा जीवन उद्देश्यों में बड़ा अन्तर है। समष्टिगत जन-चेतना में बहुत कमी है। आज कितने प्रतिशत लोग हैं जो देश-प्रेम से प्रेरित हैं और उसके जीवन के साथ अपना जीवन मिलाकर चलते हैं, मुश्किल से बीस प्रतिशत भी हों। वस्तुस्थिति यह है कि जीवन में परम्परागत जीवन की जड़ता अधिक दृष्टिगोचर होती है, शिक्षा ही एक मात्र माध्यम है जिसके द्वारा नवपरिवर्तन संभावित हो सकता है। वर्तमान में जो दोष समाज में पाये जाते हैं वे क्षुद्र राजनैतिक परिवेश के कारण बाहरी आवरण है। साक्षरता आन्दोलन की क्रियान्विति में अत्यधिक व्यय समाहित है। वह केवल राज्य के द्वारा सम्भव नहीं हो सकता, इसमें जन सहयोग भी पूरा अपेक्षित है। तब शिक्षा कार्य व आर्थिक विकास दोनों समानान्तर रूप ले सकते हैं।

शिक्षाविद् जे० डी० सेठी का यह अभिमत है कि शिक्षा एक तटस्थ तत्त्व नहीं है अपितु त्वरित तत्त्व है। उनकी यह मान्यता है कि शिक्षा पद्धति सामाजिक-आर्थिक तन्त्र का प्रतिबिम्ब है। शिक्षा की बाध्यतायें ही समय तथा तकनीकी की चुनौतियों का सामना कर सकती हैं। शिक्षा एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है और यूनेस्को (Unesco) उससे सम्बद्ध है। शिक्षा संकट का अर्द्ध विकसित देशों में अधिक प्रभाव है। भारत भी उस संकट से कम प्रभावित नहीं है, क्योंकि विश्व की गरीब जनसंख्या का चालीस प्रतिशत इस देश में निवास करता है।

गरीबी और निरक्षरता दोनों संलग्न होने से आम दृष्टिकोण में निराशावादी और निष्क्रियता की भावना अधिक घर कर गई है। अभी भी देश के भीतरी भाग प्राचीन व्यवस्था के जीते-जागते उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। परिवर्तन के अंश नवीनता को समर्दशित नहीं कर सके हैं। इस युग में रहना है तो उसी परिवेश में जीना पड़ेगा, तब भारत विश्व समुदाय में समुचित स्थान प्राप्त कर सकता है। गहन क्षेत्रीय योजना के माध्यम से साक्षरता तथा कार्यात्मकता का समन्वित प्रयास आगे के मार्ग को प्रशस्त कर सकता है और वही लोक शिक्षण है। लोक शिक्षण से न केवल अज्ञानता व असाक्षरता ही दूर होती है, अपितु सम्बद्ध समस्याओं से प्रेरित जागृति का संचार स्वाभाविक होता है।

संगठित ज्ञान व्यक्तिविशेष की वह शक्ति है जिसके द्वारा अपने क्रिया-कलापों में अनवरत सुधार लाया जा सकता है। कार्य-प्रणाली की परिधि इतनी व्यापक हो चुकी है कि जीवन क्रिया के विकास में अधिक सीमा निहित है। मानसिक विकास एक सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है जिसके द्वारा प्रतिभा उजागर होती है और जीवन सुखमय बनता जाता है, जिससे पूर्व की पीढ़ियें वंचित रही हैं।

यूरोपियन पुनरुत्थान और फ्रान्स की क्रान्ति ने औद्योगिक क्रान्ति तथा लोकतन्त्र को जन्म दिया है। व्यक्तिवाद ने गहरी जड़ें जमाई हैं। आज व्यक्ति विकास की चरम सीमा की ओर उन्मुख है। मानव मस्तिष्क ने चकित कर दिया है कि आज वह अन्तरिक्ष में अपना प्रभुत्व स्थापित करने जा रहा है। भारत भी इस श्रेणी में आ गया है। अनुसन्धान करने वाली ऐसी विलक्षण प्रतिभायें जनजीवन से ही उभरती हैं और निखार पाती हैं। किसी वर्ग विशेष की बपौती नहीं हैं, प्रतिभायें देशव्यापी बिखरी पड़ी हैं, आवश्यकता है सुप्त प्रतिभाओं को उभारना। रूस में ऐसी प्रतिभाओं को सर्वाधिक सुविधायें उपलब्ध कराई जाती हैं और उनको सर्वोच्च स्थान देते हैं। ये देश के लिये वरदानस्वरूप हैं। भारत का शिक्षित बौद्धिक क्षमता के स्तर में समान दर्जा रखता है और इस देश में प्रतिभायें बिखरी हुई हैं। इस प्रकार की सम्भाव्यतायें अधिक विकसित व संयोजित होने पर राष्ट्र निर्माण सशक्त बनता है। गरीबी के अभिशाप से शीघ्र मुक्ति मिल सकती है और राष्ट्र स्वयं-स्फूर्ति अवस्था की ओर गतिमान होता है। इसके लिए जन शिक्षा क्षेत्र एक उर्वर भूमि है, जिसमें से देश के महान मस्तिष्क प्रस्फुटित होते हैं।

दृष्टिकोण

किसी समुदाय के आर्थिक अभ्युत्थान में विभिन्न शक्तियाँ कार्य करती हैं। क्रियात्मक अनुभव बालक और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बालिकाओं के जीवन पर बहुत असर डालते हैं और वे कक्षा के चारदीवारी में संभव नहीं हैं। अनौपचारिक शिक्षा पूरक रूप से बालक के समग्र विकास को मुखरित करती है और वास्तविक जीवन जीने के लिये तैयार करती है। आधुनिक युग में किसी कार्य के निष्पादन में कला अथवा तकनीकी विकास की आवश्यकता होती है ताकि उचित व्यक्ति उचित कार्य में जुटाया जा सके, इस प्रकार का सामंजस्य पूर्णरूप से अपेक्षित है। अन्धानुकरण के कारण पचास प्रतिशत शिक्षित बेरोजगारों को उपयुक्त कार्य नहीं मिल पा रहा है, यह एक विडम्बना है। पाठ्य-पुस्तकों की शिक्षा प्रणाली व्यावसायिक तन्त्र को असन्तुलित करती हैं और उससे तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न होती है। भारत भी इस रोग से पीड़ित है। वर्तमान में ब्रिटेन के जातीय दंगे भी बहुत कुछ इस असन्तुलन के परिचायक हैं।

शिक्षा कार्यक्रम का विस्तार और उसमें विभिन्नतायें विकेन्द्रित ग्रामीण अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध होनी चाहिये। जहाँ विकास प्रक्रियायें—जैसे ग्रामीण विद्युतीकरण, लघु सिंचाई, ग्रामीण उद्योग, कृषि उन्नति, स्वास्थ्य एवं आवासीय निर्माण—लागू की जा रही हैं। वहाँ इन कार्यों में साक्षर व प्रशिक्षित युवक लग सकें, यह हमारा लक्ष्य होना चाहिये। कुशल श्रम को शहरी क्षेत्रों से आयात नहीं करना पड़े। व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार बड़ा उपयोगी हो सकता है और ग्रामीण विकास आत्म-निर्भरता की ओर अधिक अग्रसर हो सकेगा।

स्कूल व स्थानीय लोगों का परस्पर सम्पर्क व सहयोग अपेक्षित है। उसके आधार पर स्थानीय शिक्षा सुविधायें और पाठ्य-प्रणाली में वांछित गति मिल सकेगी। जनतन्त्र में जन सहयोग शिक्षा प्रसार का अभिन्न अंग है। पारस्परिक सद्भावना के आधार पर समूचे वातावरण में स्फूर्ति जागृत होती है। वह युग समाप्त हो गया कि रेगिस्तान में जन्म लेने वाला रेगिस्तान में ही मरे और पानी के बिना तड़फे, जबकि व्यावसायिक स्थानान्तरण अधिक उपलब्ध है। शिक्षा को सर्वांगीण दर्जा देने के लिये सांस्कृतिक तत्त्व का समुचित समावेश होना चाहिये। इस दृष्टि से नैतिक शिक्षा मानवीय मूल्यों का उचित पोषण कर सकती है। धर्म निरपेक्षता का यह अर्थ नहीं कि शिक्षार्थी अपनी धार्मिक भावनाओं से दूर हटता जावे। यह एक दुष्काल है जिसके कारण उच्छृंखलता में वृद्धि हुई है। आधुनिक गन्दे चलचित्रों ने असामाजिकता को प्रोत्साहन दिया है। जबकि अच्छे व उपयोगी चलचित्र, रेडियो प्रसारण, दूरदर्शन आदि माध्यम असाक्षरता-निवारण में बड़ा योगदान देते हैं। जनसंख्या वृद्धि एक भयंकर समस्या है। इसका निवारण भी शिक्षा का एक विशिष्ट अंग होना चाहिये। भावी भारत का स्वरूप इस समस्या से बहुत अधिक सम्बद्ध है। समस्याओं के निवारण में राष्ट्रीय भावना प्रमुख है। शिक्षा के पाठ्यक्रम और पद्धतियों इस लेख से समाविष्ट नहीं है।

विश्लेषण

भारत एक विकासशील राष्ट्र है। इसकी नीतियों व कार्यक्रमों में जन-कल्याण तथा प्रगतिशीलता परिलक्षित होती है। जब क्रियान्वयन की कसौटी के पक्ष पर आंशिक सफलता ही प्राप्त कर पाती है। कर्तव्यपरायणता और सत्यनिष्ठा वर्तमान वातावरण में दोषमुक्त नहीं हो सकती हैं। शिक्षा सुधार समयोपयोगी बनाने के लिये काफी चर्चायें सुनने व पढ़ने में आती हैं तथापि कोई ठोस परिणाम उभर कर नहीं आया है। मैकाले की शिक्षा पद्धति विशेष रूप से नौकरशाही वर्ग को तैयार करती रही है जो राष्ट्र के जन-जीवन से तटस्थ रही है।

इस समय देश में शैक्षिक व्यवस्था में लगभग छह लाख प्राथमिक शालायें, चालीस हजार माध्यमिक विद्यालय, पैंतालीस सौ महाविद्यालय एवं एक सौ बीस विश्वविद्यालय कार्यरत हैं। जिनमें पैंतीस लाख शिक्षक हैं और कुल व्यय तीन हजार करोड़ रुपये हैं। इस मद में रक्षा व्यय से दूसरा स्थान है। गत तीस वर्षों में साक्षरता प्रतिशत में १९ से ३६ प्रतिशत तक वृद्धि हो पाई है। लोक-तन्त्र में प्रत्येक को शिक्षाध्ययन मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत जाता है लेकिन वर्तमान की स्थिति को धीमी गति कहना चाहिये। फिर भी जो भी शिक्षा दी गई वह बहुत कुछ एकांगी रही है और कहाँ तक जीवनोपयोगी रही है, विचारणीय प्रश्न है। क्या वर्तमान शिक्षा पद्धति ने निर्माणात्मक नागरिकता का सृजन किया है? यह एक प्रश्नवाचक चिन्ह है जिसको नकारा नहीं जा सकता।

कार्ल मार्क्स ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर एक कठोर प्रहार किया है। उसके कथनानुसार इस पूँजीवादी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वतन्त्र शिक्षा प्रणाली ने व्यक्ति-व्यक्ति के बीच में खाई पैदा कर दी है, वर्ग संघर्ष को प्रश्रय दिया है और समस्त मानव समाज अमानवीय व्यवहार की ओर सतत बढ़ा जा रहा है। इससे विश्व-सुरक्षा व शान्ति खतरे में पड़ गई है। अपेक्षित है स्कूली शिक्षा तो अनिवार्य बने जिसमें वांछित सर्वांगीण विकास लक्षित रखा जाय और जीवनोपयोगी हो। दूसरी ओर उच्च शिक्षा चयनित व विवेकपूर्ण हो, उसमें डिगरियों की लोलुपता प्रमुखता न हो। गरीब वर्ग को उपयुक्त सुविधायें प्रदान की जा सके। शिक्षा में समायोजन लोकतन्त्र में भी आवश्यक है।

राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम (१९७८-८३) निरक्षरता उन्मूलन की दृष्टि से एक विशाल कार्यक्रम देश के सम्मुख है। उसके पीछे दृढ़ संकल्पता, राष्ट्रीय भावना और साधन किस सीमा तक उपलब्ध है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। हर अच्छे कार्यक्रम के साथ प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ स्वतः जन्म लेती हैं, कार्य में अवरोधक बन जाया करती हैं, देश के लिये, जनतन्त्र में एक दुर्भाग्य है।

गरीब देश में उच्च शिक्षा में जो आधिक्य है वह एक जटिल प्रश्न है। जनतन्त्र में समाधान आसान नहीं है। साधनों का अपव्यय अवश्य है। यदि आधिक्य पर राशि व्यय की जाने वाली प्राथमिक शिक्षा पर जुटाई जाती तो सम्भवतः प्राथमिक शिक्षा बहुत पहले अनिवार्य हो सकती थी और ५ से १४ वर्ष के बालक को भी शिक्षा सुविधा सब को उपलब्ध हो सकती थी। अतिरिक्त उच्च शिक्षित बेरोजगारी का सामना देश को नहीं करना पड़ता और माँग और पूर्ति का सामंजस्य बना रहता। इस प्रकार के अपव्यय से तत्कालीन देश को हानि होती है। लागत लाभ सिद्धान्त के आधार पर सार्वजनिक राशि का आवंटन अधिक हितकर रहता है। उस स्थिति में जनता अधिक लाभान्वित हो सकती थी, यह मेरी मान्यता है।

उपसंहार

वर्तमान में शिक्षा प्रणाली में देश की विभिन्न शक्तियाँ कार्यरत हैं, जैसे शिक्षक, शिक्षार्थी, ग्रामीण युवक, सामाजिक कार्यकर्त्ता, कार्यरत फील्ड कर्मचारीगण, स्वैच्छिक संगठन तथा राज्य के शिक्षा तथा समाज कल्याण विभाग। मुख्य समस्या यह है कि अपने-अपने कार्य सम्पादन में किस सीमा तक अनुप्राणित हैं और राष्ट्रहित के प्रति किस सीमा तक समर्पित भावना से योगदान देते हैं। शिक्षा कार्यक्रम एक महान पुनीत अनुष्ठान है, उसी अनुरूप ऊपर से नीचे तक कार्य का सम्पादन हो तो वांछित सफलता अवश्य सम्भावी हो सकेगी। सुदृढ़, गतिशील व स्वस्थ शैक्षिक संरचना भारत के भावी स्वरूप को अधिक उजागर कर सकेगी। आदर्श एक बात है और उसका निर्वाह दूसरी बात है। शिक्षक व स्कूल पर हमारा ध्यान केन्द्रीभूत होना चाहिये।

हमारी प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के शब्दों में—"हमारा प्रयास देश में प्रत्येक परिवार को आत्मनिर्भर बनाने का है।" यह एक सुन्दर स्वप्न है जिसको थोड़े समय में पूरा नहीं किया जा सकता। प्रारम्भ तो हो चुका है और इस उद्देश्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर है। दूसरे शब्दों में पारिवारिक स्वावलम्बिता उपयोगी जन-शिक्षा में अन्तर्निहित है। अन्त में भारत राष्ट्र में एक शिक्षणशील समाज का निर्माण हो जिसका लक्ष्य आजीवन शिक्षा ग्रहण करना हो और विकास मार्ग में सतत अग्रसर रहे। असम्भव तो नहीं कहा जा सकता।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह पंचहिं ठाणेहिं जेहिं सिक्खा न लब्भई ।
थंभा, कोहा, पमाएणं रोगेणाऽलस्सएण य ॥३॥

१. अभिमान, २. क्रोध, ३. प्रमाद, ४. रोग तथा ५. आलस्य– इन पाँच कारणों से शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकती ।

अह अट्ठहिं ठाणेहिं सिक्खासीले त्ति वुच्चई ।
अहस्सिरे सया दन्ते न य मम्ममुदाहरे ॥४॥
नासीले न विसीले, न सिया अइलोलुए ।
अकोहणे सच्चरए सिक्खासीले त्ति वुच्चई ॥५॥

—उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन ११

१. जो हँसी-मजाक नहीं करता, २. जो सदा शान्त रहता है, ३. जो किसी का मर्म प्रकाशित नहीं करता है, ४. जो अशील—सर्वथा आचारहीन न हो, ५. जो विशील—दोषों से कलंकित न हो, ६. जो रसलोलुप—चटोरा न हो, ७. जो क्रोध न करता हो, ८. जो सत्य में अनुरक्त हो,

—इन आठ गुणों वाला व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करने के योग्य होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org